हिरनौटा

दमीत्री मामिन-सिबिर्याक

ਹਿਰਨੌਟਾ

हिरनौटा

दमीत्री मामिन-सिबिर्याक

अनुराग ट्रस्ट

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : रु. 25.00

प्रथम संस्करण : 2004
पुनर्मुद्रण : जनवरी 2010

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट
डी - 68, निरालानगर
लखनऊ - 226020

आवरण एवं रेखांकन :
रामबाबू

लेज़र टाइप सैटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन
मुद्रक : वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ

पुस्तक और इसके लेखक के बारे में

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध रूसी लेखकों में एक नाम द्मीत्री मामिन-सिबिर्याक का भी है। उनका जन्म 1860 में उराल में हुआ और 1912 में मृत्यु तक अपने जीवन के अधिकांश वर्ष उन्होंने वहीं बिताये।

उराल पहाड़ों और जंगलों का इलाका है, जहाँ 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ज़ार प्योत्र प्रथम के ज़माने में रूसी सौदागरों ने लोहे के कारखाने बनाये थे। लेखक ने अपने संस्मरणों में लिखा था : "अभी तक मेरी आँखों के आगे लकड़ी का वह पुराना घर है, जिसकी पाँच खिड़कियाँ चौक पर खुलती थीं। उसकी खूबी यह थी कि एक ओर उसकी खिड़कियाँ यूरोप में खुलती थीं और दूसरी ओर एशिया में। मेरे पिता मुझे दूर की पहाड़ियाँ दिखाते हुए बताया करते थे : 'वह देखो, वे पहाड़ एशिया में हैं, हम यूरोप और एशिया की सीमा रेखा पर रहते हैं..."

लेखक के पिता एक कारखाने के पादरी थे और कोई खास अमीर आदमी नहीं थे, लेकिन उन्हें किताबों का बड़ा शौक था। वह अपनी आमदनी का बड़ा भाग किताबें खरीदने पर खर्च करते थे। बेटे को पिता से यह साहित्य-प्रेम विरासत में मिला। मामिन-सिबिर्याक उराल के सौदागरों, कारखानेदारों और आम लोगों के बारे में उपन्यास लिखते थे। उन दिनों उराल के आम लोग खानों और मिलों में मज़दूरी भी करते थे और साथ ही खेती भी। लेनिन ने मामिन-सिबिर्याक के बारे में कहा था : "इस लेखक की रचनाओं में हम उराल के लोगों के विशिष्ट जीवन, उनके रहन-सहन के सजीव दृश्य पाते हैं..."

मामिन-सिबिर्याक भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्य महान रूसी लेखकों की ही भाँति बच्चों को समाज का भविष्य मानते थे और उन्हें बेहतर जीवन, उच्च मानवीय मूल्य, गहरी संवेदनशीलता, न्याय-बोध और उच्च संस्कृति देने की चिन्ता उनके लेखन का एक मुख्य सरोकार थी। अन्य समकालीन महान रूसी लेखकों की ही तरह वे भी साहित्य को एक ऐसा सजीव सूत्र मानते थे, जो उन्हीं के शब्दों में, "बच्चों को कमरे से बाहर ले जाता है और सारे संसार से जोड़ता है।"

बच्चों के व्यक्तित्व-निर्माण में पुस्तको की भूमिका के बारे में मामिन-सिबिर्याक का कहना है : "मेरे लिए अभी तक प्रत्येक बाल-पुस्तक जीवनदायिनी है, क्योंकि वह बाल-आत्मा को जगाती है, बच्चे के विचारों को निश्चित दिशा में बढ़ाती है और लाखों बाल-हृदयों के स्पंदन में उसके हृदय का स्पंदन मिलाती है। बाल-पुस्तक वसंती किरण है, जो बाल-आत्मा की सुप्त शक्तियों को जागृत करती है और इस उर्वरा धरती पर डाले गये बीजो को उगाती है। इस पुस्तक की बदौलत ही सब बच्चे एक विराट आत्मिक परिवार के सदस्य बन जाते हैं, जिसमें कोई नृवंशीय और भौगोलिक सीमाएँ नहीं होतीं।"

जाहिर है कि अपने खुद के उच्च नागरिक एवं नैतिक गुणों के बल पर ही मामिन-सिबिर्याक जैसे रूसी लेखक बच्चों के लिए अपने ज़माने के जीवन का सच्चा चित्रण कर सके, उन्होंने जीवन के अन्धकारमय पक्षों को छिपाया नहीं और उज्ज्वल पक्षों की अनदेखी भी नहीं की। बच्चों के बारे में लिखते समय उन्नीसवीं शताब्दी

के रूसी लेखक प्रायः सदा ही बच्चों के कष्टों और दुखों की बात करते हैं। जैसे 'हिरनौटा' कहानी का नन्हा ग्रिशूक भी सख़्त बीमार है। बच्चों के दुखों के इन वर्णनों का आधार तत्कालीन रूसी समाज में मौजूद था। 1917 की मजदूर क्रान्ति के पहले, ज़ार की राजशाही के ज़माने मे रूस के आम किसानों-मजदूरों का जीवन नारकीय था। भूख, जीतोड़ मेहनत, अमीरों के जुल्म, अभाव और बीमारियों के चलते असमय मौतें आम बात थी। अनाथ बच्चों की बहुतायत थी और दो जून की रोटी जुटाने के लिए उन्हें भी हाड़तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी। इन हालात को वही लोग बदल सकते थे जो अमानवीय स्थितियों मे भी मानवीय बने रह सकते थे और अपने स्वाभिमान, वीरता और आशाओं को बचाये रख सकते थे। इसीलिए, तोल्सतोय, तुर्गनेव, चेख़ोव, मामिन-सिबिर्याक जैसे लेखकों ने बच्चों को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए बाल-साहित्य के लेखन को ज़रूरी समझा और उनके लिए लिखते समय जीवन के कड़वे यथार्थ के चित्रण के साथ ही आशाओं के ऐतिहासिक स्रोतों, उच्च मानवीय गुणों की ज़मीन तथा भावी जीवन के क्षितिज को भी उद्घाटित करने पर बल दिया। मामिन-सिबिर्याक ने एक बार लिखा था : "हमारे रूसी जीवन की कमियाँ, उसकी बुराइयाँ सभी रूसी लेखकों का मनपसन्द विषय हैं। लेकिन यह तो केवल नकारात्मक पहलू हुआ, दूसरा सकारात्मक पहलू भी तो होना चाहिए। वरना, हम जी नहीं सकते, साँस नहीं ले सकते, सोच नहीं सकते... कहाँ है यह जीवन? कहाँ हैं वे रहस्यमय स्रोत, जिनसे रूस का यातनाओं भरा इतिहास रिसता रहा है? कहाँ हैं वे पथ जिन पर हमारे महाबली चला करते थे ?

इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ते हुए मामिन-सिबिर्याक ने बड़ों के लिए श्रेष्ठ उपन्यास लिखने के साथ ही बच्चों के लिए लगभग 130 रचनाएँ लिखीं। इनमें सबसे प्रसिद्ध हुई जानवरों के बारे में कहानियों की पुस्तक : 'सुनो कहानी, बिटिया रानी।' इसके अलावा 'नदी किनारे शीत निवास' और 'हिरनौटा' कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय हैं। इन रचनाओं में उराल की प्रकृति का काव्यमय चित्रण है और मेहनतकश रूसी व्यक्ति की उच्च नैतिकता उजागर की गयी है।

'सुनो कहानी, बिटिया रानी' के प्रकाशन के बाद मामिन-सिबिर्याक ने अपनी माँ को लिखा था : "यह मेरी प्यारी पुस्तक है–यह प्रेम की लेखनी से लिखी गयी है, इसलिए यह शेष सभी रचनाओं से अधिक समय तक बनी रहेगी।" 'हिरनौटा' कहानी भी यदि आज तक रूसी बच्चों में, और दुनिया के दूसरे देशों के बच्चों मे भी लोकप्रिय बनी हुई है तो इसका कारण शायद यही है कि यह "प्रेम की लेखनी" से लिखी गयी है।

यह वफ़ादारी की, प्रेम की सर्वविजयी शक्ति की कहानी है। बीमार बच्चा ग्रिशूक अपने दादा से हिरनौटे का शिकार कर लाने को कहता है। बूढ़े शिकारी के लिए पहाड़ों में भटकना आसान नहीं, पर वह पोते की जान बचाने की ख़ातिर तीन दिन तक ताइगा जंगल में भटकता रहता है और आखिर हिरन की खुरी देख लेता है। और तभी एक अप्रत्याशित बात होती है। हम पढ़ते हैं : "बस एक क्षण और, और नन्हा हिरनौटा अंतिम चीख के साथ घास पर लुढ़क जाता, पर इसी क्षण बूढ़े शिकारी को याद हो आया कि कितनी वीरता के साथ इसकी माँ इसकी रक्षा कर रही थी, यह भी याद हो आया कि कैसे उसके ग्रिशूक की माँ ने जान देकर अपने बेटे को भेड़ियों का निवाला होने से बचाया था। बूढ़े येमेल्या के दिल पर सहसा एक चोट सी लगी और

उसने बंदूक नीची कर ली।

कहानी का अंत अनुपम है। येमेल्या अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी में लौटता है। बीमार पोते की बात वह पूरी न कर सका था। वह बच्चे को अपने असफल शिकार की कहानी सुनाता है और बच्चा हँसता है। रात बीते तक वह दादा से पूछता रहता है कि हिरनौटा कैसा था और कैस वह भाग गया। लेखक इन शब्दों के साथ कहानी ख़त्म करता है : "...बच्चा सो गया और सारी रात उसे सपने में नन्हा सा पीला-पीला हिरनौटा दिखाई देता रहा, जो जंगल में अपनी माँ के साथ घूम रहा था, बूढ़ा भी अलावघर पर सो रहा था और नींद में मुस्करा रहा था।"

इस सीधी-सादी कहानी में कितना मर्म है! इसमें प्रेम के नाम पर, जिसे प्रेम करते हो उसके लिए किये गये आत्मबलिदान के सौंदर्य का गुणगान किया गया है। और इसमे यह मर्मस्पर्शी चित्रण भी किया गया है कि किस तरह शिकारी दादा की सहृदयता और ज़िन्दा बच गये हिरनौटे के लिए खुशी ग्रिशूक के लिए मारे गये पशु के मांस से अधिक आरोग्यकर सिद्ध होती है।

हिरनौटा

बहुत दूर कहीं उराल पहाड़ों के उत्तरी भाग के घने जंगल में तीच्की का एक गाँव था। गाँव में सिर्फ ग्यारह घर थे, या यों कहिए कि दस, क्योंकि ग्यारहवाँ घर सबसे अलग बिल्कुल जंगल के पास ही था। गाँव के चारों ओर चीड़ आदि सदाबहार पेड़ों का वन ऊँची दीवार सा खड़ा था। फ़र वृक्षों की चोटियों के पीछे कुछ पहाड़ दिखाई देते थे। इन विशाल नीले-सुरमई पहाड़ों ने तीच्की को चारों ओर से अपने घेरे में बंद कर रखा था। सबसे पास था 'झरनों का पहाड़' जिसकी सफ़ेद चोटी ख़राब मौसम में धुँधले बादलों के पीछे छिप जाती थी। 'झरनों के पहाड़' से बहुत से सोते और झरने बहते थे। ऐसा ही एक झरना तीच्की तक आता था और

सर्दी-गमी-बारहों महीने लोग उसका ठंडा, ओस सा निर्मल जल पीते थे।

तीच्की में घर बेतरतीब बने हुए थे, जिसका जहाँ मन आया बना लिया। दो घर ऐन नदी के तट पर थे, एक-पहाड़ की तेज़ ढलान पर और बाकी-नदी किनारे इधर-उधर बने हुए थे-तितर-बितर हो गई भेड़ों के समान। तीच्की में कोई गली भी नहीं थी, घरों के बीच बस एक पगडंडी चली गई थी। तीच्की वालों को गली की जरूरत ही नहीं थी, क्योंकि उनके पास कोई घोड़ा-गाड़ी तक न थी, जिसे वे गली में चलाते। गर्मियों में यह गाँव दुर्गम दलदलों और झाड़-झँखाड़ भरे जंगल से घिर होता था, सो संकरी जंगली पगडंडियों से भी वहाँ मुश्किल से ही पहुँचा जा सकता था और वह भी सदा नहीं। बारिशों के दिनों में पहाड़ी नदियाँ उफनतीं और तीच्की के शिकारियों को तीन-तीन दिन तक पानी उतरने का इंतजार करना पड़ता।

तीच्की के सभी मर्द शिकार के धत्ती थे। सर्दियाँ हो या गर्मियाँ वे जंगल में ही घुसे रहते थे-अच्छा था कि जंगल भी बगल में ही था। हर मौसम का अपना शिकार होता था : जाड़ों में वे भालू, मार्टेन, भेड़िये और लोमड़ी की शिकार करते थे; शरद में गिलहरी का, बसंत मे जंगली बकरियों और गर्मियों में भाँति-भाँति के पक्षियों का शिकार करते थे। संक्षेप में, बारहों महीने उनको भारी काम करना होता था, जो अक्सर खतरे से ख़ाली नहीं होता था।

जंगल के बिल्कुल पास ही बने घर में बूढ़ा शिकारी येमेल्या अपने नन्हे पोते ग्रिशूक के साथ रहता था। येमेल्या का लकड़ी के लट्ठों का बना घर ज़मीन में धंसा हुआ लगता था, उसमें बस एक ही खिड़की थी। छत की लकड़ियाँ कब की सड़ चुकी थीं, चिमनी ईंटों का ढेर बनकर रह गई थी। येमेल्या के घर के चारों ओर बाड़ नहीं थी, न ही फाटक था और न कोई कोठरी ही। घर के दरवाज़े पर बने लट्ठों के चबूतरे तले रात को भूखा लीस्को हूकता रहता था। लीस्को पूरे गाँव का एक सबसे अच्छा शिकारी कुत्ता था। हर बार शिकार पर निकलने से पहले येमेल्या बेचारे लीस्को को तीन दिन तक भूखा रखता था, ताकि वह अच्छी तरह शिकार ढूँढ़े।

"दादा... दादा... अब तो हिरन हिरनौटों के साथ घूम रहे होंगे। है न, दादा..." एक दिन शाम को नन्हा ग्रिशूक दादा से पूछ रहा था। उसके मुँह से बोल मुश्किल

से निकल रहे थे।

"हाँ बेटे, हिरनौटों के साथ घूम रहे हैं," पेड़ की छाल से अपने लिए जूता बनाते हुए दादा ने जवाब दिया

"दादा हिरनौटा ले आओ, तो कितना अच्छा रहे, हैं दादा"

"हाँ, हाँ बेटे, लाएँगे। क्यों नहीं लाएँगे। गर्मियाँ आ गई हैं, अब हिरन हिरनौटों के साथ कुकुरमाछियों से बचने के लिए घने झुरमुटों में छिपेंगे। बस तभी मैं हिरनौटे का शिकार कर लाऊँगा। तुम थोड़ा सब्र रखो।"

लड़के ने कुछ जवाव नहीं दिया, बस एक ठंडी साँस भरी। ग्रिशूक सिर्फ़ छह बरस का था, पिछले दो महीनों से वह लकड़ी के तख़्त पर हिरन की गर्म खाल ओढ़े पड़ा हुआ था। वसंत में, जब बर्फ़ पिघल रही थी, तभी उसे सर्दी लग गई थी और वह तब से ठीक ही नहीं हो पा रहा था। उसका साँवला चेहरा पीला पड़ गया था, लंबा हो गया था, आँखें बड़ी-बड़ी लगने लगी थीं, नाक तीखी हो गई थी। येमेल्या देख रहा था कि पोता दिन पर दिन घुलता जा रहा है, पर समझ नहीं पा रहा है कि क्या करें। जड़ी-बूटियों का काढ़ा बनाकर भी पिलाता रहा था, दो बार उसे हम्माम में भी ले गया था–पर बच्चे की हालत सुधर नहीं रही थी। ग्रिशूक खाता भी कुछ नहीं था। रोटी का टुकड़ा चबा लेता और बस। वसंत से बकरी का नमक लगा माँस बचा हुआ था, पर ग्रिशूक उसकी ओर देखना तक नहीं चाहता था।

छाल के जूते बन चले थे। दादा सोच रहे थे : "देखो तो, क्या चाहता है- हिरनौटा... जैसे-तैसे हासिल करना ही होगा।"

येमल्या सत्तर बरस का हो चला था–बाल सफ़ेद कमर झुकी हुई, शरीर दुबला पतला और लंबी-लंबी बाँहें। येमेल्या के हाथों की उँगलियाँ मुश्किल से मुड़ती थीं, मानो वे काठ की बनी हों।

पर चलता वह फुर्ती से था और थोड़ा-बहुत शिकार भी कर लेता था। हाँ, बूढ़े की नज़र जवाब देने लग गई थी, खास तौर पर जाड़ों में जब धवल हिम झिलमिलाता था, हीरों की तरह चमकता था, तब बूढ़े येमेल्या को बहुत तकलीफ होती थीं। येमेल्या की आँखों की वजह से ही चिमनी ढह गई थी और छत सड़ गई थी और खुद भी

वह अक्सर घर पर बैठा रहता था, जबकि दूसरे लोग जंगल मे होते थे।

बूढ़े के लिए चैन से घर पर आराम से रहने के दिन आ गए थे, पर कोई उसकी जगह सँभालनेवाला नहीं था, ऊपर से ग्रिशूक को भी बस उसी का सहारा रह गया था, बूढ़े येमेल्या को उसकी देखभाल करनी थी... ग्रिशूक के बाप को तीन साल पहले ताप हुआ था, उसी में वह मर गया था। माँ जाड़े की एक शाम को बेटे के साथ गाँव से घर लौट रही थी, जब भेडियों ने उन्हें आ घेरा था। यह चमत्कार ही था कि बच्चा बच गया। माँ की टाँगों पर जब भेड़िये टूट पड़े थे, तो उसने बेटे को अपने शरीर से ढक लिया था और ग्रिशूक बच गया था।

बूढ़े दादा को पोते का पालन-पोषण करना पड़ा, ऊपर से यह बीमारी आ गई। मुसीबत कभी अकेली नहीं आती ...

---

* लम्बे ओवरकोट जैसा पहनावा

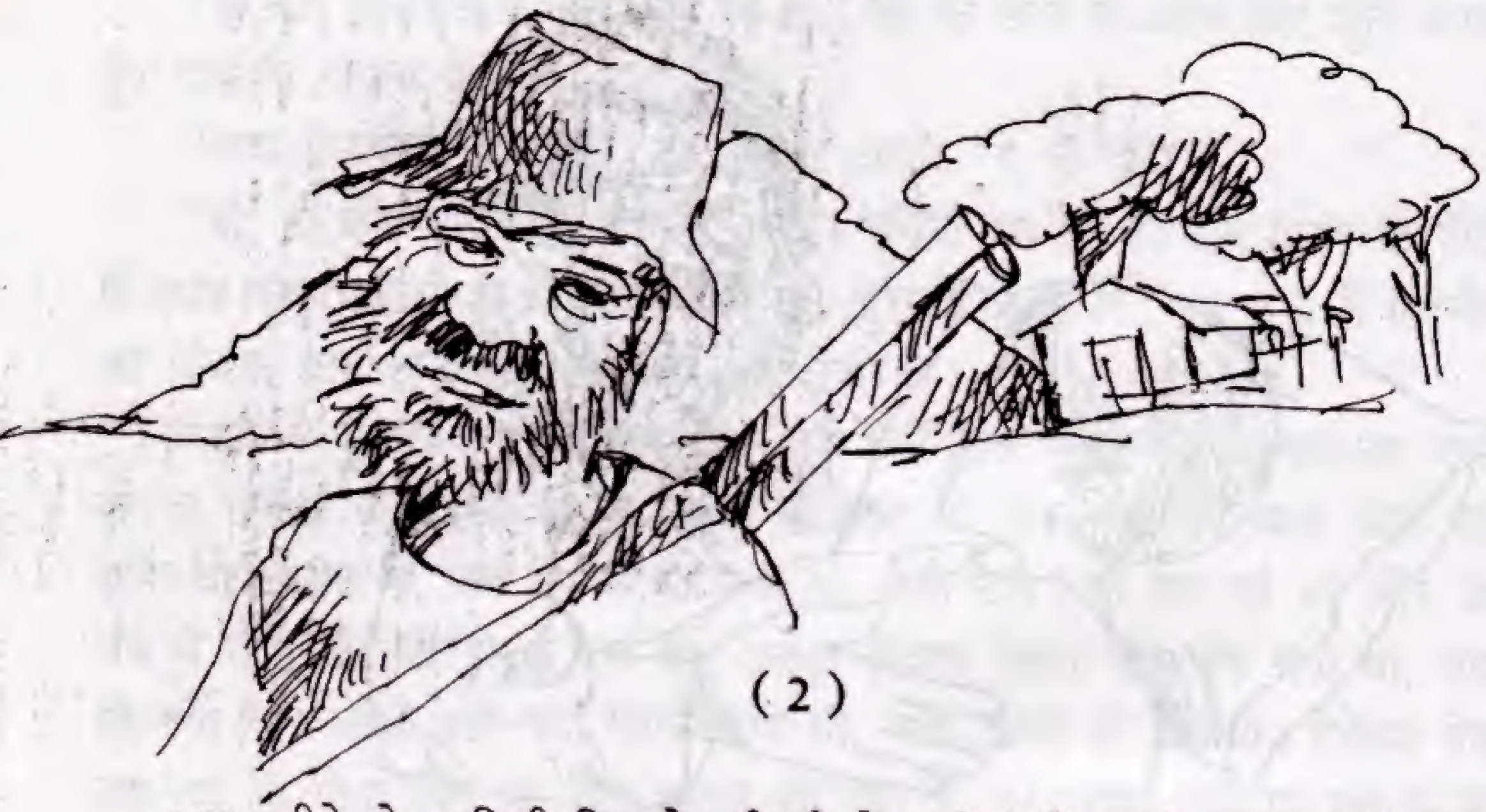

(2)

जून महीने के आखिरी दिन थे। तीव्की में इन्हीं दिनों सबसे ज़्यादा गर्मी पड़ती थी। बूढ़े और बच्चे ही घरों पर रह गए थे। शिकारी जंगलों में हिरनों का शिकार करने जा चुके थे। येमेल्या के घर में बेचारा लीस्को तीन दिन से भूख से हूक रहा था, जैसे भेड़िये जाड़ों में हूकते हैं।

"लगता है, येमेल्या शिकार पर जा रहा है," गाँव में औरतें कह रहीं थीं।

यह सच था। सचमुच ही, थोड़ी देर में येमेल्या तोड़ेदार बंदूक हाथ में लिये घर से निकला, कुत्ते को खोला और जंगल की ओर चल दिया। वह छाल के नए जूते पहने था, कंधे पर झोला लटक रहा था जिसमें रोटी थी। उसने फटा-पुराना कफ्तान* और सिर पर हिरन की खाल का कनटोप पहन रखा था। बूढ़ा कई बरसों से हल्की टोपी नहीं पहन रहा था, सर्दी-गर्मी में हिरन की खाल का कनटोप ही पहने रहता था जो उसके गंजे सिर की पाले से भी और गर्मी से भी अच्छी तरह रक्षा करता था।

---

* लम्बे ओवरकोट जैसा पहनावा

"अच्छा ग्रिशूक बेटे, अब तुम मेरे आने तक ठीक हो जाओ," येमेल्या ने चलते हुए पोते से कहा। "बुढ़िया मलान्या तुझे देख जाया करेगी, मैं जाकर तेरे लिए हिरनौटा लाता हूँ।"

"दादा, हिरनौटा लाओगे न।"

"कहा तो बेटे, ले आऊँगा?"

"पीला-पीला हिरनौटा?"

"हाँ, बच्चे, पीला-पीला..."

"अच्छा, मैं तुम्हारी बाट जोहूँगा... देखना, गोली चलाओगे, तो निशाना न चूकना ..."

येमेल्या कई दिनों से हिरनों के शिकार पर जाने की सोच रहा था, लेकिन पोते को अकेले नहीं छोड़ना चाहता था। मगर अब उसकी हालत कुछ सुधरी लगती थी, सो बूढ़े ने क़िस्मत आज़माने का फैसला किया था। और बूढ़ी मलान्या भी ग्रिशूक की देखभाल करने को तैयार हो गई थी–घर पर अकेले बैठे रहने से यही अच्छा था।

जंगल येमेल्या के लिए घर के समान ही था। वह जंगल को जानता भी कैसे नहीं, जबकि सारी उम्र वह बंदूक और कुत्ते के साथ जंगल में घूमता रहा था। चारों ओर सौ मील तक वह सारी पगडंडियाँ, सारी निशानियाँ जानता था।

अब जून के अंत में जंगल बड़ा ही सुहावना लग रहा था। तरह-तरह की घास और बूटियों में रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे, हवा में भीनी-भीनी महक थी और

आकाश में गर्मियों का स्निग्ध सूरज चमक रहा था, जंगल और घास पर, कलकल बहती नदी और दूर के पहाड़ों पर प्रकाश बरसा रहा था।

हाँ, जिधर नज़र जाती, वहीं मनभावन दृश्य नजर आता था। येमेल्या कई बार रुका–साँस लेने को और इधर-उधर देखकर आँखों से सुख पाने को। जिस पगडंडी पर वह जा रहा था, वह साँप की तरह बल खाती, बड़े-बड़े पत्थरों और चट्टानों के तेज उभारों से बचकर निकलती हुई पहाड़ पर चली गई थी। बड़े-बड़े पेड़ काटे जा चुके थे, रास्ते के आस-पास भोज के नए पेड़ और मधु लवंग की झाड़ियाँ उग रही थीं, रोवान वृक्षों के हरे छत्र फैले हुए थे। जहाँ-तहाँ नए फ़र वृक्षों के घने झुरमुट भी थे–रास्ते के पास ही उनकी हरी बाड़ बनी होती, पंजेनुमा, झबरीली टहनियाँ फैली होती। पहाड़ के बीच तक पहुँचकर एक जगह से दूर के पहाड़ों और तीच्की का खुला नजारा दिखता था। गाँव गहरी, तंग घाटी के तल पर खोया हुआ था। किसानों के घर यहाँ से काले धब्बों से लगते थे। येमेल्या आँखों को धूप से बचाते हुए देर तक अपने घर को देखता रहा और पोते के बारे में सोचता रहा।

पहाड़ से उतरकर जब वे फर वृक्षों के घने जंगल में घुसे तो येमेल्या ने कहा:

"चल, लीस्को, ढूँढ़!"

लीस्को को दो बार कहने की जरूरत नहीं थी। वह अपना काम अच्छी तरह जानता था। अपनी नुकीली थूथनी से ज़मीन सूँघता हुआ वह हरे झुरमुट में खो गया।

थोड़ी देर को ही पीले चकत्तोंवाली उसकी पीठ नज़र आई।

शिकार शुरू हो गया था।

भीमकाय फ़र वृक्षों की नुकीली चोटियाँ आसमान तक उठी लगती थीं। झबरीली टहनियाँ एक दूसरे में गुँथी हुई थीं और उनसे शिकारी के सिर के ऊपर अभेद्य के छत बनी हुई थी, जिसमें से कहीं-कहीं ही सूरज की किरण इठलाती चली आती थी और पीली सी काई पर सुनहरा चकत्ता बना देती थी या पर्णांग की चौड़ी पत्ती को चमका देती थी। ऐसे जंगल में घास नहीं उगती, येमेल्या कालीन जैसी नरम काई पर चला जा रहा था।

कुछेक घंटो तक शिकारी इस जंगल में भटकता रहा। लीस्को तो मानो धरती में समा गया था। बस, कभी-कभार ही पाँव तले टहनी चटक जाती या कोई चटकीला कठफोड़वा एक पेड़ से उड़कर दूसरे पर जा बैठता। येमेल्या बड़े ध्यान से चारों ओर सब कुछ देख रहा था : कहीं कोई निशानी तो नहीं है, हिरन अपने सींगों से कोई टहनी तो नहीं तोड़ गया, काई पर कहीं खुरों के निशान तो नहीं। जंगल में कहीं-कहीं काई के बीच जमीन उभरी हुई थी और इन उभारों पर घास उगती थी। येमेल्या देख रहा था कि यह घास कहीं नुची हुई है कि नहीं। अंधेरा घिरने लगा था। बूढ़े को थकावट महसूस होने लगी थी। रात काटने का भी कोई इंतज़ाम करना था। "शायद हिरनों को दूसरे शिकारियों ने डरा दिया है," येमेल्या सोच रहा था। पर तभी लीस्को के किकियाने की हल्की सी आवाज सुनाई दी, और आगे कहीं टहनियाँ चटकीं। येमेल्या फर के तने से सटकर खड़ा हो गया और इंतजार करने लगा।

यह हिरन ही था। दस सींगों वाला सुंदर हिरन, सभी वन्य पशुओं में सबसे भव्य जीव। लो, उसने अपने सींगों को पीठ से लगा लिया और ध्यान से सुनने लगा, हवा को सूँघने लगा, ताकि पलक झपकते ही बिजली की तरह हरे झरमुट मे गायब हो जाए।

बूढ़े येमेल्या ने हिरन को देख लिया, पर वह बहुत दूर था : गोली वहाँ तक नहीं पहुँचेगी। लीस्को झुरमुट मे लेटा हुआ, साँस रोके गोली चलने का इंतजार कर रहा था; उसके नथुनों में हिरन की गंध थी।

गोली चली और हिरन तीर की तरह भाग उठा। येमेल्या का निशाना चूक गया था, लीस्को भूख के मारे हूक उठा। बेचारे कुत्ते को हिरन के भूने मांस की गंध आ रही थी, बड़ी सी हड्डी दिखाई दे रही थी, जो मालिक उसे देगा, लेकिन इसके बजाय उसे भूखे पेट सोना पड़ रहा था। बहुत ही बुरी बात थी।

"चलो, मौज लेने दो उसे... हमें तो हिरनौटा पाना है... सुना तूने, लीस्को?" रात को सौ साला फर वृक्ष के नीचे आग के पास बैठे हुए येमेल्या कह रहा था।

कुत्ता अपनी नुकीली थूथनी अगले पंजों पर रखे दुम हिला रहा था। उसके भाग में आज बस रोटी का सूखा दुकड़ा ही लिखा था, जो येमेल्या ने उसे दिया।

(3)

तीन दिन तक येमेल्या जंगल में भटकता रहा और सब बेकार : हिरनौटे के साथ हिरन उसकी नज़र में नहीं आए। बूढ़े को लग रहा था कि उसमें अब और हिम्मत नहीं रही, मगर खाली हाथ घर लौटने का साहस भी वह नहीं कर पा रहा था। लीस्को बिल्कुल उदास हो गया था और दुबला पड़ गया था। हालाँकि इस बीच दो-एक छोटे-छोटे खरगोश उसने पकड़ लिये थे।

तीसरी रात भी उन्हें जंगल में आग के पास काटनी पड़ रही थी। सपने में भी बूढ़े येमेल्या को पीला सा हिरनौटा दिखता था, जैसा ग्रिशूक ने लाने को कहा था;

बूढ़ा देर तक निशाना बाँधता रहता, पर हर बार हिरन भाग निकलता। लीस्को को भी शायद हिरन दिख रहे थे, क्योंकि वह कई बार किकियाया था और भौंकने लगा था।

चौथे दिन जब शिकारी और कुत्ता बिल्कुल निढाल हो गए थे, अचानक ही उन्हें हिरन और हिरनौटे के निशान मिल गए। वे पहाड़ की ढलान पर फर के घने झुरमुट में थे। सबसे पहले तो लीस्को ने वह जगह ढूँढ़ी, जहाँ हिरन ने रात काटी थी और फिर घास में खोई खुरी भी सूँघ निकाली।

"हिरनी और हिरनौटा हैं," घास पर छोटे और बड़े खुरन्यास देखते हुए येमेल्या सोच रहा था। "आज सुबह यहीं थे... लीस्को, ढूँढ़, भैया, ढूँढ़..."

चिलचिलाती धूप थी, हवा मे तपस थी। कुत्ता जीभ बाहर निकाले झाड़ियाँ और घास सूँघ रहा था; येमेल्या मुश्किल से टाँगें घसीट रहा था। अचानक जानी-पहचानी चटक और सरसराहट सुनाई दी। लीस्को घास पर सपाट हो गया, जरा भी हिल-डुल नहीं रहा था। येमेल्या के कानों में पेाते के शब्द गूँज रहे थे; "दादा, हिरनौटा लाना... पीला हिरनौटा हो।" वह रही हिरनी। कितनी सुंदर थी हिरनी वह जंगल के सिरे पर खड़ी थी और सहमी-सी सीधे येमेल्या की ओर देख रही थी। कीड़े-मकोड़ों का झुंड उसके ऊपर मंडरा रहा था, जिससे वह रह-रहकर सिहर उठती थी।

"नहीं, तू मुझे धोखा नहीं दे पाएगी," येमेल्या अपने घात-स्थान से बाहर निकलते हुए सोच रहा था।

हिरनी काफी पहले ही शिकारी की गंध पा चुकी थी , पर वह निडर होकर

उसकी हरकतों को देखे जा रही थी।

"मुझे हिरनौटे से दूर ले जाना चाहती है," रेंग-रेंगकर उसके पास पहुँचते हुए येमेल्या के मन में आया।

बूढ़ा निशाना बाँधना ही चाहता था कि हिरनी सावधानी से थोड़ी दूर भाग गई और फिर खड़ी हो गई। येमेल्या फिर अपनी बंदूक के साथ रेंगने लगा।

फिर वह हौले-हौले हिरनी के पास पहुँचा और फिर से ज्यों ही उसने गोली चलानी चाहीं, हिरनी भाग खड़ी हुई।

कई घंटों तक येमेल्या बड़े धीरज से हिरनी का पीछा करता रहा। वह बुदबुदा रहा था : "नहीं तू हिरनौटे से दूर नहीं जा पाएगी।"

मनुष्य और पशु का यह द्वन्द्व साँझ ढले तक चलता रहा शिकारी को छिपे बैठे हिरनौटे से दूर ले जाने की चेष्टा में माँ ने दस बार अपनी जान खतरे में डाली। बूढ़े येमेल्या को अपने शिकार की इस निडरता पर गुस्सा भी आ रहा था और हैरानी भी हो रही थी। आखिर बचकर तो वह जा नहीं पाएगी... कितनी बार उसने इस तरह अपनी बलि दे रही माँ को मारा था! लीस्को परछाईं की भाँति अपने मालिक के पीछे-पीछे रेंग रहा था, और जब हिरन नजरों से बिल्कुल ओझल हो गया,

तो हौले से अपनी गर्म नाक उसकी टाँग पर मारी।

बूढ़े ने पलटकर देखा और फौरन नीचे झुक गया। उससे कोई बीस गज़ दूर मधु लवंग की झाड़ी तले वही पीला हिरनौटा खड़ा था, जिसकी खोज में वह तीन दिन से भटक रहा था। बड़ा प्यारा हिरनौटा था, कुछ ही हफ्तों का–पीले-पीले रोयें और पतली टाँगें, सुन्दर सिर पीछे को उठा हुआ था, और जब वह ऊपर की टहनी को पकड़ना चाहता तो अपनी लचीली गरदन खींचता।

शिकारी के हृदय की धड़कन मानो थम गई थी, उसने बंदूक का घोड़ा चढ़ाया और नन्हें, असहाय जीव के सिर का निशाना साधा... बस एक क्षण और, और नन्हा हिरनौटा अंतिम चीख के साथ घास पर लुढ़क जाता, पर इसी क्षण बूढ़े शिकारी को याद हो आया कि कितनी वीरता के साथ इसकी माँ इसकी रक्षा कर रहीं थी, यह भी याद हो आया कि कैसे उसके ग्रिशूक की माँ ने अपनी जान देकर बेटे को भेड़ियों का निवाला होने से बचाया था। बूढ़े येमेल्या के दिल पर सहसा एक चोट सी लगी, और उसने बंदूक नीची कर ली। हिरनौटा पहले की ही तरह झाड़ी के पास टहल रहा था, पत्तियाँ नोच रहा था और ज़रा सी आहट सुनने को चौकन्ना था। येमेल्या ने जल्दी से खड़े होकर सीटी बजाई, नन्हा हिरनौटा बिजली की तरह झाड़ियों में ग़ायब हो गया।

"वार रे, कैसे दौड़ता है," बूढ़ा कह रहा था और कुछ सोचते हुए मुस्करा रहा था। "तीर सा उड़ गया... देखा, लीस्को, भाग गया हमारा हिरनौटा! ठीक है, अभी तो उसे बड़ा होना है... देख तो, कितना फुर्तीला है!"

बूढ़ा देर तक एक ही जगह पर खड़ा-खड़ा मुसकराता रहा, हिरनौटे का याद करता रहा।

दूसरे दिन येमेल्या अपने घर लौटा।

"दादा.... हिरनौटा लाए?" ग्रिशूक ने पूछा, जो बड़ी बेसब्री से दादा के लौटने का इंतजार करता रहा था।

"नहीं, ग्रिशूक, पर मैंने देखा था उसे!"

"पीला था?"

"हाँ, पीला-पीला, और थूथनी काली। झाड़ी के नीचे खड़ा पत्तियाँ नोच रहा था. .. मैंने निशाना साधा"

और चूक गयें?

"नहीं, ग्रिशूक : मुझे तरस आ गया नन्हे हिरनौटे पर, हिरनी पर। मैंने सीटी बजाई और बस हिरनौटा चौकड़ियाँ भरता झाड़ियों में ग़ायब हो गया। भाग गया, कमबख्त...."

बूढ़ा येमेल्या बड़ी देर तक पोते को यह बताता रहा कि कैसे वह तीन दिन तक जंगल में हिरनौटे को खोजता रहा था और वह उससे बचकर भाग निकला। लड़का सुनता रहा और बूढ़े दादा के साथ जी खोलकर हँसता रहा।

"मैं तुम्हारे लिए जंगली मुर्गा लाया हूँ, ग्रिशूक," कहानी खत्म करते हुए येमेल्या दादा ने कहा। "इसे मैं न मारता, तो भेड़िये खा जाते।"

जंगली मुर्गे को छील-छालकर साफ किया गया और पतीले में डाल दिया गया। लड़के ने खुशी-खुशी शोरबा पिया। सोने से पहले उसने कई बार दादा से पूछा:

"दादा, हिरनौटा भाग गया?"

"हाँ, बेटे भाग गया..."

"पीला था?"

"हाँ, सारा पीला-पीला था, बस थूथनी और खुर काले थे।"

यह सब सुनते-सुनते ही बच्चा सो गया और सारी रात उसे सपने में नन्हा सा, पीला-पीला हिरनौटा दिखाई देता रहा, जो जंगल में अपनी माँ के साथ घूम रहा था; बूढ़ा भी अलावघर पर सो रहा था और नींद में मुस्करा रहा था।

दमीत्री मामिन-सिबिर्याक

अनुराग ट्रस्ट
लखनऊ